शिकारी और इकोसिस्टम के रिश्ते

विनता विश्वनाथन

"शिकारी अपने इकोतंत्र की रचना व कार्य पर ऊपर से नीचे की ओर काफी प्रभाव डालते हैं।" इकॉलॉजी, पर्यावरण और संरक्षण सम्बंधी लेखों में यह कथन प्रायः पढ़ने को मिलता है। हममें से कई को ये प्रभाव प्रत्यक्ष नज़र नहीं आते, न ही हमें यह पता होता है कि इस तरह के व्यापक कथन के लिए किस तरह के प्रमाण उपलब्ध हैं। अलबत्ता, यदि यह बात सही है तो किसी भी इकोतंत्र में शिकारियों की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि तथ्य यह है कि ये सर्वोच्च शिकारी फिलहाल विलुप्ति के ज़ोखिम में भी हैं। ऐसे में शायद उन प्रमाणों को देखना उपयोगी होगा जो उक्त कथन की बुनियाद में हैं।

पहले तो यह देखें कि शिकारियों का अपने शिकार पर क्या असर होता है? ज़ाहिर है, वे अपने शिकार की जान ले सकते हैं। मगर इसके अलावा भी कई प्रभाव हो सकते हैं। अनगिनत अध्ययनों से पता चला है कि शिकारी के प्रभाव में शिकार के व्यवहार, प्राकृतवास के उपयोग, शरीर क्रियाओं और जीवन चक्र वगैरह में तबदीलियां आती हैं। जैसे शिकार प्रजाति के सदस्यों द्वारा चौकसी की अवधि, उनकी गतिशीलता, अपने प्राकृतवास के कुछ हिस्सों का ही उपयोग (जैसे हो सकता है कि वे अपने आवास के खुले हिस्सों का उपयोग न करें या कम अवधि के लिए करने लगें), शिकारी से बचाव की रणनीतियों में निवेश और बच निकलने के तरीकों का उपयोग; यानी हर पहलू पर शिकारियों की संख्या, घनत्व और व्यवहार का असर होता है। शिकारी की वजह से उत्पन्न हुआ शारीरिक क्रियात्मक तनाव भी शिकार प्रजातियों को प्रभावित कर सकता है - उनकी वृद्धि दर, बीमारियों और परजीवियों के प्रति उनकी भेद्यता और यहां तक कि प्रजनन में उनकी सफलता तक प्रभावित हो सकते हैं। अर्थात शिकारियों के समक्ष शिकार की दुर्बलता शिकारी और शिकार दोनों के गुणधर्मों पर निर्भर होती है।

प्रभावों की फेहरिस्त तो प्रभावशाली है। और यह कहना भी असंगत न होगा कि शिकार खुद भी अपने आसपास के पर्यावरण पर भी इसी तरह के विविध और उल्लेखनीय असर डालते हैं - जैसे वे जिन जीवों को अपना भोजन बनाते हैं या जो जीव उनके भोजन को प्रभावित करते हैं वगैरह। पूरा मामला लगभग सतोलिया या लघौरी में जमे पत्थरों की ढेरी जैसा है। जैसे ही गेंद एक पत्थर को छूती है, असर सारे पत्थरों पर पड़ता है, फिर चाहे वे गिरें या न गिरें।

यहां मैं इस विषय में किए गए सारे अध्ययनों का सार प्रस्तुत करने की बजाय कुछ विशिष्ट अध्ययनों से प्राप्त प्रमाणों की चर्चा करते हुए इकोसिस्टम की बनावट और उसके कार्यों पर शिकारियों के असर से जुड़े कुछ प्रश्नों को टटोलने की कोशिश करूंगी।

इकोतंत्रों की बनावट व कार्यों पर शिकारियों के असर के बारे में हम जो कुछ जानते हैं, वह प्रायः जलीय इकोतंत्रों, खास तौर से समुद्री इकोतंत्रों के अध्ययनों से पता चला है। कई देशों में मत्स्य उद्योग पकड़ी गई मछली प्रजातियों का व्यवस्थित रिकॉर्ड रखता है। शोधकर्ताओं ने खुद अपने द्वारा किए गए अनुसंधानों के साथ-साथ इन रिकॉर्ड्स का फायदा उठाकर पिछले कई दशकों में शिकारियों और उनके शिकारों की आबादी में हुए परिवर्तनों का विस्तृत एक चित्र प्रस्तुत किया है।

अक्सर ऐसा होता है कि किसी चीज़ का महत्त्व तभी पता चलता है जब वह गुम हो जाती है और हम यह देख पाते हैं कि उसकी अनुपस्थिति में बाकी चीज़ें कैसे बदलती हैं। इसी प्रकार से, समुद्री इकोतंत्र में शिकारियों की भूमिका तभी स्पष्ट हुई जब इंसानों द्वारा दोहन के चलते शिकारी मछलियों की आबादी में काफी गिरावट आ गई।

उदाहरण के लिए, प्रशांत महासागर में 1950 से 2000 के बीच ट्यूना और शार्क समेत 12 बड़ी शिकारी मछलियों के कैच में 10 गुना की कमी आई। और इस कमी के साथ-साथ पेलेजिक स्टिंगरे (*डेसिएटिस वायोलेसिया*) तथा अन्य

छोटी मछलियों की पकड़ में 10-100 गुना की वृद्धि हुई। इसी तरह के परिवर्तन कमोबेश दुनिया भर में देखे गए हैं।

शिकारियों का असर महज़ उनके शिकार तक सीमित नहीं रहता। जैसे शिकारी को हटा देने से शिकारों की संख्या बढ़ती है, आगे शिकार के अपने भोजन पर भी असर होते हैं। किसी एक प्रजाति या प्रजातियों के एक समूह की आबादी में बदलाव के असर एक शृंखला का रूप ले लेते हैं। यूएसए के पूर्वी तट और उत्तर-पश्चिमी अटलांटिक में पिछले कुछ दशकों में अति-दोहन/मत्स्याखेट के चलते शार्क की आबादी में गिरावट आई है। ये इलेस्मोब्रैंक मछलियों का शिकार करती हैं, खास तौर से काऊनोज़ रेज़ (*राइनोप्टेरा बोनेसस*) का। शार्क की आबादी में गिरावट के साथ इन मछलियों की तादाद खूब बढ़ी है। इसके साथ ही 2004 में स्केलोप्स (*आर्गेपेक्टेन इरेडिएन्स*) का लगभग सफाया हो गया। ये स्केलोप्स एक तरह की सीपियां हैं जो काऊनोज़ रेज़ का मुख्य भोजन है।

यह सही है कि मछुआरे भी इन सीपियों को पकड़ते हैं मगर वे अंडे देने के बाद ही इन्हें हाथ लगाते हैं। अर्थात स्केलोप्स की अगली पीढ़ी की आबादी पर मछुआरों का तो कोई गंभीर असर नहीं हुआ होगा। तो यह देखना था कि क्या स्केलोप्स की आबादी में ज़बर्दस्त गिरावट काऊनोज़ स्टिंगरे द्वारा शिकार की वजह से ही हो रही है। इसकी छानबीन के लिए शोधकर्ताओं ने स्केलोप्स को प्रायोगिक पिंजड़ों में रखा। इनकी तुलना पिंजड़े से बाहर के स्केलोप्स से की गई। शोधकर्ताओं ने देखा कि बाहरी स्केलोप्स तो तेज़ी से समाप्त हो गए; इससे पता चला कि इस बात की काफी संभावना है कि काऊनोज़ की बहुत अधिक संख्या और घनत्व ही स्केलोप्स के सफाए के लिए ज़िम्मेदार है। स्केलोप्स की घटी हुई आबादी के कारण उनकी प्रजनन दर भी कम हुई और परिणाम यह हुआ कि 2004 में स्केलोप उद्योग ठप हो गया।

उक्त उदाहरण में शिकारी का असर अपने शिकार पर और उससे आगे की भोजन शृंखला पर भी हुआ। इसके चलते उनके पूरे इकोतंत्र की बनावट ही बदल गई। इसके अलावा उस इकोतंत्र द्वारा प्रदत्त सेवाओं पर भी असर हुआ। इन इकोतंत्र सेवाओं में मनुष्य के लिए भोजन व आमदनी प्रदान करना शामिल हैं।

यह सही है कि इकोतंत्र कार्यों (जैसे पोषण चक्र की प्रक्रियाओं) पर शिकारियों के असर सम्बंधी अधिकांश शुरुआती प्रमाण झीलों और समुद्रों पर किए गए अध्ययनों से मिले थे मगर स्थलीय इकोतंत्रों के भी अध्ययन कम नहीं हुए हैं। जैसे शोधकर्ताओं ने दर्शाया है कि यूएसए के न्यू इंगलैण्ड के घास के मैदानों में शिकारी प्रजातियों की संख्या, तुलनात्मक अनुपात और यहां तक कि शिकार करने के उनके तौर-तरीकों का असर ऐसी प्रक्रियाओं पर भी पड़ता है जिनमें वे सीधे-सीधे भागीदार नहीं होते। जैसे सूक्ष्मजीवों द्वारा वनस्पति कचरे का विघटन ऐसी ही एक प्रक्रिया है। इस मामले में जिस शिकारी के असर का अध्ययन किया गया वह थी मकड़ियां। इनका प्रमुख शिकार टिड्डे होते हैं। टिड्डों पर उनके प्रभाव का नाटकीय असर कचरे के विघटन और पोषण चक्र जैसे इकोतंत्र कार्यों पर पड़ता है।

येल विश्वविद्यालय के ड्रॉर हॉलेना और उनके साथियों ने अपने प्रयोगों के माध्यम से इस बात को प्रदर्शित भी किया है। उन्होंने कुछ टिड्डों को मकड़ी युक्त खेतों तथा कुछ टिड्डों को मकड़ी-रहित खेतों में पाला। मकड़ी युक्त खेतों में शिकार होने का ज़ोखिम था, यानी तनाव था। अंतर यह था कि मकड़ियों के मुखांगों को चिपकाकर बंद कर दिया था। लिहाज़ा वे अपने शिकार यानी टिड्डों को कोई वास्तविक शारीरिक नुकसान नहीं पहुंचा सकती थीं और न ही उन्हें मार सकती थीं। मुखांग चिपका देने से मकड़ियों की शारीरिक गतिविधियों पर कोई असर नहीं पड़ा था। इससे पहले किए गए एक अध्ययन में यह भी स्पष्ट हो चुका था कि टिड्डे बंद मुंह और खुले मुंह वाली मकड़ियों के बीच भेद नहीं कर पाते हैं।

अब शोधकर्ताओं ने यह देखा कि शिकार होने का ज़ोखिम टिड्डों की शरीर क्रिया पर क्या असर डालता है। इसके लिए उन्होंने टिड्डों के शरीर में कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात की जांच की। ये दोनों तत्त्व पोषक तत्त्व हैं। पूर्व के अध्ययनों में शोधकर्ता दर्शा चुके थे कि तनावग्रस्त शाकाहारियों को अधिक ऊर्जा की ज़रूरत होती है।

इकोतंत्र की बनावट यानी इकोसिस्टम स्ट्रक्चर और इकोतंत्र के कार्य यानी इकोसिस्टम फंक्शन्स के अर्थ पर विचार करना लाज़मी है। दरअसल ये किसी इकोतंत्र का विवरण देने के दो अलग-अलग तरीके हैं। सजीवों के किसी समूह और उनके परिवेश के निर्जीव घटकों से मिलकर इकोतंत्र बनता है।

जब हम किसी इकोतंत्र के विभिन्न सजीव घटकों (यानी विभिन्न प्रजातियों के सदस्यों) के बीच भोजन सम्बंधी रिश्तों के लिहाज़ से बात करते हैं (जैसा कि उपरोक्त उदाहरण में किया) तो वह उस इकोतंत्र की पोषण संरचना की बात होती है। मसलन, एक सामान्य पोषण संरचना में विभिन्न स्तरों की प्रजातियों की सूची होगीः प्राथमिक उत्पादनकर्ता (जो सूर्य के प्रकाश को वनस्पतियों के ऊतकों में तबदील करते हैं), उपभोक्ता (जो प्राथमिक उत्पादनकर्ताओं और एक-दूसरे का भक्षण करते हैं), मृतपोषी (जो उपभोक्ता के रूप में ही नहीं बल्कि मृत पदार्थों के सफाए का काम भी करते हैं और जंतु व वनस्पतियों के ऊतकों को सरल पदार्थों में तोड़ते हैं, जबकि वे इन सबका उपयोग खुद नहीं करते)।

दूसरी ओर इकोतंत्र कार्य वे प्रक्रियाएं हैं जो इन तंत्रों को संचालित करती हैं - जैसे ऊर्जा का प्राथमिक उत्पादन, पोषक तत्त्वों और जैव-भू-रासायनिक चक्र। ये वे प्रक्रियाएं हैं जो किसी इकोतंत्र में सजीवों के बीच कड़ियां बनाती हैं।

तनाव की स्थिति में वे कार्बोहाइड्रेट-प्रचुर भोजन का उपभोग ज़्यादा करते हैं और ज़्यादा प्रोटीन का विघटन करके ग्लूकोज़ बनाते हैं। इन प्रक्रियाओं की वजह से उनके शरीर में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है। इसके अलावा, जब वे प्रोटीन का विघटन करते हैं, तो उससे बनने वाली नाइट्रोजन को वे शरीर में भंडारित नहीं कर पाते। लिहाज़ा वे ज़्यादा नाइट्रोजन का उत्सर्जन करते हैं।

तो अपेक्षा यह थी कि तनावग्रस्त टिड्डों के शरीर में कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात ज़्यादा (यानी नाइट्रोजन की अपेक्षा कार्बन की अधिकता) होगा। और शोधकर्ताओं को यही देखने को मिला। हालांकि टिड्डों के उक्त दो समूहों के बीच कार्बन-नाइट्रोजन अनुपात में अंतर ज़्यादा नहीं था, मगर सांख्यिकीय रूप से उल्लेखनीय था। 0.15 का जो यह अंतर दिखा, उसका महत्त्व अगले प्रयोग में उजागर हुआ।

अगले प्रयोग के लिए शोधकर्ता घास के मैदान की कुछ मिट्टी प्रयोगशाला में लाए और मीसोकॉस्म तैयार किए। मीसोकॉस्म एक किस्म के प्रायोगिक दड़बे होते हैं जो प्राकृतिक तंत्र से मेल खाते हैं और इनमें पर्यावरणीय कारकों में फेरबदल किए जा सकते हैं। एक मीसोकॉस्म में उन्होंने तनावग्रस्त परिस्थिति के मृत टिड्डों की थोड़ी-सी मात्रा डाल दी जबकि एक अन्य में बराबर मात्रा ऐसे मृत टिड्डों की डाली जो शिकारी से मुक्त परिस्थिति में पले थे। दो अलग-अलग परिस्थितियों में पले टिड्डों के कार्बन खनिजीकरण की दर (यानी जैविक पदार्थों के निर्जीव पदार्थों में बदलने की दर) में कोई खास अंतर नहीं था हालांकि अधिक कार्बन वाले जीवों में पदार्थों के विघटन की दर कम होनी चाहिए। यह देखकर शोधकर्ताओं को कोई अचरज नहीं हुआ क्योंकि खनिजीकरण को अंजाम देने वाले जो जीव मिट्टी में पाए जाते हैं, उनके लिए टिड्डे बढ़िया क्वालिटी का संसाधन होते हैं। अचरज की बात यह थी कि मिट्टी में वनस्पति कचरे के विघटन की दर पर दोनों तरह के टिड्डों के प्रभाव में अंतर था।

दोनों परिस्थितियों में पले खनिजीकृत टिड्डों के साथ उन्होंने थोड़ी-थोड़ी मात्रा में घास का कचरा मिला दिया। 118 दिनों बाद शोधकर्ताओं ने देखा कि तनावग्रस्त टिड्डों के प्रभाव से कचरे के विघटन की दर तनावरहित टिड्डों की अपेक्षा 62 प्रतिशत कम रही। यानी दोनों के प्रभाव में तीन गुना का अंतर था।

आगे और प्रयोगों से पता चला कि दो परिस्थितियों में खनिजीकरण यानी विघटन के लिए जवाबदेह जीवों को उपलब्ध नाइट्रोजन की मात्रा में अंतर ही इसका मूल कारण है। गौरतलब है कि दो तरह के टिड्डों में नाइट्रोजन की मात्रा अलग-अलग थी। कहने का मतलब यह है कि टिड्डे जैसे मूल्यवान संसाधन की गुणवत्ता का असर उन प्रक्रियाओं पर भी होता है जो वास्तव में उनसे बहुत नज़दीक से सम्बद्ध नहीं हैं। और ये अंतर शिकारी के प्रभाव से पैदा हुए हैं। अर्थात शिकारी किसी इकोतंत्र की बनावट और कार्यों पर ऊपर से नीचे काफी गहन प्रभाव डालते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***